International Journal of Information Movement Vol.3 Issue IX (January 2019)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 15-19

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों के काव्य में विद्रोह

डॉ सुनीता शर्मा
सहायक प्रवक्ता, हिन्दी
सेठ नवरंगराय लोहिया जयराम
गर्ल्ज कॉलेज, लोहार माजरा, कुरुक्षेत्र।
Email: sunitajrgcollege@gmail.com

हिन्दी साहित्य की सब विधाओं में कविता सर्वाधिक विवाद का विषय रही है। गत वर्षों की हिन्दी कविता ने तो यह बात पूर्णतया सिद्ध कर दी है । कविता का हर वाद इस घोषणा के साथ आया कि सच्ची और सही कविता वही है लेकिन यह बात सबको मान्य नहीं हुई । स्थापन और प्रत्याख्यान का यह द्वन्द्व छायावाद के बाद से लेकर आज तक चला आ रहा है । इन प्रतिरोधों, द्वन्द्वों तथा प्रतिघोषणाओं के इस वातावरण में सामान्य एवं रुचिवान पाठक को यह समझ नहीं आता कि वस्तुस्थिति क्या है? सच्चाई क्या है? यदि हम माने कि पिछली कसौटियां तथा मान्यताएं यदि बदली हैं तो नई कसौटियां तथा मान्यताएं कौन–सी हैं? आज इक्कीसवीं सदी में नित नए–नए प्रयोग हो रहे हैं । सीढ़ी दर सीढ़ी विकास बढ़ रहा है । विज्ञान, कला अथवा साहित्य में नए–नए अनुसंधान हो रहे हैं, कविता भी इन सबमें पीछे नहीं है । मेरा ध्यान कविता की ओर अकस्मात ही खिंचा जाता है, जिसने मुझे बहुत प्रभावित किया है । मेरे मनोमस्तिष्क में बहुत से विचार कुलबुलाते रहते है जिनको मैं सामने लाना चाहती हूं । पिछले दो दशकों की कविता को अपनी पहचान बनाने हेतु अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा । अपनी अस्मिता के लिए उन्होंने विद्रोह का बिगुल बजा दिया । इस शोध पत्र के विषय के रूप में मैं पिछली सदी के अंतिम दो दशकों के काव्य को लेकर इसमें प्रस्फुटित विद्रोह को सामने लाने का प्रयास कर रही हूं ।

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है– मानवता की सुरक्षा का प्रश्न । आज मनुष्य मनुष्य से आतंकित है । रचनाकार की चिंताएं यहीं से गंभीरता धारण करने लगती हैं । इन दो दशकों का काव्य मानवता के प्रति करूणा का भाव विद्रोह की शीतल और शान्त मनःस्थिति के बीच भी ज्वलन्त और प्रखर प्रश्न को समाज के बीच छोड़ रहा है–

"मैंने बेफिक्री से
धीरे–धीरे पढ़ा शब्द ....गो ..... ली
इतने धीरे पढ़ने पर भी ठांय गूंज हुई
शायद मुझे गोली लगी ।"[1]

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि हर विसंगति और आक्रोश के पीछे जो प्रक्रिया है वह है संस्कारों के प्रति सम्मोहन की ....

'बनी बनाई पगडंडियों पर चलने की बजाय प्रगति और मोक्ष के पथ तलाशने की हिम्मत कर पाता है ।[2]

हमारे पूर्वजों द्वारा गढ़ी गई कुछ परम्पराएं आज विवशताएं बन गई हैं जिनमें विघटन की जड़ें मौजूद हैं । यदि इन्हें छूट मिल जाती है तो धर्म और संस्कृति की आड़ लेकर ये ताडंव करके पूरी सृष्टि को अपनी

गिरफ्त में लेकर विश्वव्यापी युद्ध के रूप में सामने आती है । मानसिकता के इस खिलवाड़ पर रोक लगाना रचनाकार का दायित्व है ।

आज कविता में अंतर्द्वन्द्व मूल रूप में सामने आता है । आज की कविता में वैचारिक आंतकवाद प्रभावी है । आधुनिक शहरी जीवन में कामकाजी दम्पत्ति का समूचा भावात्मक संसार बदल रहा है । अंतिम दो दशकों की कविता की सामग्री संग्रहों, समीक्षाओं और आलोचनाओं के रूप में सामने आई । मेरी लेखनी इस संदर्भ में विशेष सतर्कता और सावधानी बरतने के प्रयास में रहेगी कि कविता के इस वैचारिक प्रदूषण में यह शिविरबद्ध न हो जाए ।

कविता में विद्रोह आकांक्षा और स्वप्न के समान उतरता है–

सूनी इमारत
कहीं कोई नजर नहीं आता
आती हैं दो आवाजें
दर्द को बखानती एक
सहलाती दूसरी
कभी कभी उड़ने वाले कबूतर
फर्श पर घिसे जमे
बींट के निशान ।[3]

आज के काव्य में विद्रोह अपने और पराये को भी सही पहचान नहीं दे पाता।

"जब संघर्ष होता है और आदमी लाठी चलाता है तो कभी–कभी वह अपनों पर भी पड़ जाती है । शत्रुओं पर प्रहार करते समय कभी–कभी एकाध हाथ मित्रों पर भी पड़ जाया करता है ।"[4]

प्रश्नवाचक चिन्ह की निरंतरता इन दो दशकों की कविता का मूल केंद्रबिन्दु है । ऐसा लगता है कि जैसे कुछ बदला नहीं है । इस दृष्टि से प्रश्नाकुलता कवियों की मूल संवेदना है–

"रात पसरी है हजार साल के बीच
रात के स्याह सफे पर
सप्तऋषि बैठे हैं
प्रश्नवाचक चिन्ह की तरह ।[5]

आज के युग का सबसे बड़ा संकट यह है कि राजनीतिक जीवन स्वार्थ एवं कुर्सी के चारों ओर घूम रहा है । सभी वर्ग दिग्भ्रमित हो रहे हैं। आज राजनीति अपना अर्थ खो चुकी है । प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को नोचने में लगे हुए हैं–

नेताओ कहां छिपाओगे
अपना चटका हुआ चेहरा
जो सच निगल रहा है
झूठ उगल रहा है
कारण एक ही है– लालच ।[6]

इन दशकों की कविता में निरंतर व्याप्त रहने वाला तनाव है जो समसामयिक घटनाओं तथा घात–प्रतिघातों से उपजता है । समाज की विद्रूपता से कवि का अन्तर्मन तड़प कर कराह उठता है–

"ये कैसा समझौता है बापू
मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकता
तुम्हें मुझसे उम्मीद भी नहीं है
और मुन्ना की बन्दूक तैयार है
भविष्य को तय करने के लिए ।"[7]

कवि मानता है कि राजनीति एक ऐसी ओट है जिसके पीछे अनेक प्रकार के शोषण, छलावे तथा मारक हथियार छिपे हैं–

"लोकतंत्र की द्रोपदी
खींचे जाते चीर
लज्जित–लज्जित फ्रेम में
यह नंगी तस्वीर
राजनीति ओढ़ा करे
काला कंबल यार
कैसे कैसे छिपे हैं
ये घातक हथियार ।"[8]

कहने को प्रजातंत्र है लेकिन जो भी शोषण के विरूद्ध आवाज उठाता है, उसकी आवाज को दबा दिया जाता है ।

परिवर्तनशीलता मनुष्य का जन्मजात स्वभाव है । वृक्षों के कटने से जब उसने अनुभव किया कि पर्यावरण को खतरा है तो उसने अपनी सोच भी बदली । कविता कवि के अंदर का एक सैलाब है जो शब्दों के माध्यम से जनमानस को पर्यावरण सुरक्षा का संदेश देता दिखाई पड़ता है । आज चारों ओर पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति ने डेरा जमा लिया है । देश पाश्चात्य संस्कृति के रंग में पूर्णरूपेण रंगा जा चुका है । आज भारतीय संस्कृति की पहचान मानवता असुरक्षित हो गई है–

"मनुष्यों में वह सिर्फ मुझे पहचानती है
और मैं भी मनुष्य
जब तक हूं तब तक हूं ।[9]

आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले आधुनिक कविता ने ईश्वर से मुंह मोड़ कर अनास्था, संदेह, अंधविश्वास आदि के विद्रोह का बिगुल बजाया था, जब ये विद्रोह आगे नहीं बढ़ा तो उसने चुप हो जाना ही बेहतर समझा । आज कवि के पास छिपने के लिए कोई अभ्यारण्य नहीं बचा है । आज कवि ऊंची आवाज में अपना एकालाप नहीं सुनाता, वह धीरे–धीरे कुछ बुदबुदाता है । वह धर्म और ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करते हुए उसे शोषणकर्त्ता मानता है ।

"किसी भी लड़ाई में
ईश्वर कभी नहीं मारा गया

उसके पास थे सबसे अधिक
अस्त्र शस्त्र और ईश्वरत्व
कभी बंदर, कभी भालू, कभी आदमी
ईश्वर की उपस्थिति में
सम्मुख उसके
सदैव मरता रहा ।
उसके लिए लड़ता रहा ।[10]

आज धर्म के ठेकेदारों ने स्वार्थपूर्ति के लिए धर्म के मूल सिद्धांतों को ही बदल डाला है । उन्हीं के कारण मनुष्य मनुष्य न रहकर धर्म के ठेकेदारों की रोटियों पर पलने वाला पालतू जानवर बन गया है ।

आज देश का आर्थिक ढांचा चरमरा रहा है । उपभोक्ता मूलक संस्कृति के फैलाव ने कविता के लिए एक चुनौती भरा संकट उपस्थित कर दिया है । आर्थिक रूप से देश की काया क्षीण हो चुकी है जिसका बाहरी रूप उजाले से भरपूर है लेकिन आंतरिक रूप चरमरा गया है ।

इस वैज्ञानिक युग में एक ओर यदि राहत है तो दूसरी ओर विनाश भी । जनमानस के हृदय में सदैव आंतक पसरा रहा है जैसे वह यही प्रश्न पूछता सा दिखाई पड़ता है–

आवाज,
आवाज है ही कहां?
ताजी विटामिनी
आवाज तो यहां
गले में ही भींच दी जाती है ।[11]

सूचना प्राद्योगिकी संचार माध्यमों ने जहां मनुष्य को एक दूसरे के बहुत नजदीक ला दिया है, हजारों मील की दूरी पर बैठे व्यक्ति से आमने सामने बतिया सकता है, वहीं दूसरी ओर आज व्यक्ति को अकेला सा कर दिया है । आज मोबाइल, कम्प्यूटर, सोशल मीडिया ने व्यक्ति को नितान्त अकेला कर दिया है । वह फेसबुक पर घंटों लगा रहता है लेकिन फेस टू फेस होने का समय उसके पास नहीं है । आज इन सबके कारण वह तनाव, अकेलेपन की असुरक्षा के साथ–साथ असाध्य बिमारियों से भी ग्रसित हो रहा है । कवि इस बात से परेशान है कि सोशल मीडिया मानवीय सम्बन्धों की दूरियां कम करने की बजाय और बढ़ा रहा है। इसने हमारी मानसिकता को विकृत बना कर आक्रमकता का चोला ओढ़ा दिया है। व्यक्ति दिशाहीन हो चुका है । हम मानसिक रूप से गुलामी की जंजीरों में बुरी तरह जकड़े जा चुके हैं ।

कवि के सामने ये बिखरे हुए दायरे एक अनुतरित्त प्रश्न चिन्ह बनकर खड़े हो गए हैं । परिवेश के प्रति विद्रोह कविता का मूल स्वर है । आज का कवि समाज की इस धरती पर लहलहाती फसल उगाना चाहता है । समाज के सवालों का मानवता के परिप्रेक्ष्य में जवाब देना यद्यपि कठिन कार्य है फिर भी कवियों का प्रयास अत्यन्त सराहनीय एवं सफल रहा है । ये कविता समाज में आशा की नई ज्योति जगाना चाहती है । कवि ने ज्ञान एवं विज्ञान की दौड़ में हृदय पर पड़ने वाले प्रतिबिम्बों को उकेरा है । विज्ञान एवं पाश्चात्य देशों की भौतिकता ने किसी सीमा तक कविता को प्रभावित किया है परंतु हर रचना के बीच में मानव व मानवता का स्वर ही मुखरित रहा है, क्योंकि मानव ही वास्तव में इस युग का केंद्रबिन्दु है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विनोद कुमार शुक्ल ; वह आदमी नया गरम कोट पहन कर चला गया विचार की तरह, आधार प्रकाशन–372 सैक्टर–17, पंचकूला हरियाणा, प्रथम आधार संस्करण– 1966, पृष्ठ–36.

2. सम्पादक कन्हैया लाल नन्दन ; सारिका, अक्तूबर 1983, पृष्ठ–68.

3. इन्दू जैन ; यहां कुछ हुआ तो था– भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली,–110003, पृष्ठ–15

4. संस्थापक सम्पादक ; हरिशंकर परसाई सम्पादक प्रो. कमला प्रमोद, वसुधा–48, जनवरी–जून 2000, प्रकाशक ए–31, निराला नगर, दुष्यंत कुमार मार्ग, पृष्ठ–35

5. सम्पादक आनंद कुमार ; तद्भव अंक–तीन सम्पर्क 18/271 इन्दिरा नगर, लखनऊ, पृष्ठ–143.

6. शिशु रश्मि, आवाज के पेड़, तारिका प्रकाशन, ए–47, शास्त्री कालोनी, अंबाला कैंट–133001, पृष्ठ–9

7. दिनेश जुगरान ; इन्द्र धनुष के अर्थ, माफ करना बापू, पृष्ठ–85

8. ज्ञानेन्द्रपति ; गंगा तट काव्य संग्रह– कबीरा खड़ा बाजार में, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लि. 2/38 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ–155, प्रकाशन वर्ष–2000

9. संपादक अंसद जैदी ; विष्णु नागर, यह ऐसा समय है, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2000, पृष्ठ–13.

10. नवल शुक्ल ; दसों दिशाओं में, ईश्वर की उपस्थिति में, आधार प्रकाशन प्राइवेट लि., एस.सी.एफ. 267/16, पंचकूला–134109, प्रकाशन वर्ष 1999, पृष्ठ–84–85.

11. रामेश्वर लाल खंडेलवाल 'तरूण' ; यह लो मेरे हस्ताक्षर अमित क्रांति प्रकाशन 149–ए, मॉडल टाऊन, एटलस रोड, सोनीपत–131001, पृष्ठ–22